लोकमान्य बालगंगाधर तिलक की शैक्षिक विचारधारा

रश्मि श्रीवास्तव*

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक एक महान देशभक्त तथा राजनीतिज्ञ थे। भारत में शिक्षा के प्रचार-प्रसार में भी उन्होंने अतुलनीय योगदान दिया। उनके जीवन का मुख्य उद्देश्य था भारतवर्ष का उत्कर्ष। इसके लिए उन्होंने शिक्षा को एक महत्वपूर्ण साधन माना। वह भारत में ऐसी शिक्षा व्यवस्था के समर्थक थे जो बालक का सर्वांगीण विकास कर उसे जीवन संघर्ष के लिए तैयार कर और छात्रों में आध्यात्मिक भावना के समावेश से उन्हें उत्तम चरित्र का स्वामी बनाकर कर्तव्यनिष्ठ बनाए और जनकल्याणकारी कार्यों के लिए प्रेरित करे।

लोकमान्य बाल गंगाधार तिलक को हम एक राष्ट्रभक्त राजनीतिज्ञ के रूप में जानते हैं जिनके ओजपूर्ण भाव के साथ कहे गये शब्द ''स्वराज्य मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है और मैं उसे लेकर रहूँगा'' आज भी भारतीय जनमानस में स्वाभिमान का भाव पैदा कर देते हैं। तिलक को राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन में उग्रवादी राजनीति का अग्रदूत माना जाता है। श्री अरविन्द ने कहा था कांग्रेस के आंदोलन में न कोई तरीका था, न चरित्र, न योजना। उसमें कुछ अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोग लगे हुए थे जिनके आदर्श पाश्चात्य थे। इस आंदोलन की जड़ें, न अतीत में थीं न वर्तमान में। तिलक पहले राष्ट्रीय नेता थे जिन्होंने अतीत से वर्तमान को मिलाया। यही कार्य उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में भी किया। उन्होंने जहाँ लॉर्ड कर्जन के निरंकुश, अपमानजनक साम्राज्यवाद को सहन नहीं किया वहीं उनके द्वारा स्थापित शिक्षा व्यवस्था को भी स्वीकृति नहीं दी। राजनीतिक स्तर पर उनके द्वारा प्रसारित स्वदेशी का संदेश शिक्षा के क्षेत्र में भी स्वीकारा गया। वे शिक्षा के माध्यम से देशवासियों

**विभागाध्यक्ष,* (बी.एड.) हीरा लाल यादव बालिका डिग्री कॉलेज, सरोजनी नगर, लखनऊ

का चरित्र निर्माण करते हुए उनको संगठित करना चाहते थे।

शिक्षा संबंधी उनके विचारों की विवेचना के क्रम में सर्वप्रथम उनके जीवनवृत्त पर एक दृष्टि डालना उपयुक्त होगा।

प्रारंभिक जीवन तथा शिक्षा

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक बलवन्त राव गंगाधर तिलक के पुत्र थे। उनका जन्म महाराष्ट्र के कोंकण जिले के रत्नागिरि स्थान पर 23 जुलाई 1856 को हुआ था। तिलक के पिता श्री गंगाधर पन्त शिक्षा विभाग में कार्य करते थे। गणित और संस्कृत के प्रति उनके हृदय में बड़ा लगाव था जो कि आगे चलकर उनके पुत्र में भी प्रकट हुआ। बाल्यकाल में ही तिलक की बुद्धि व तेजस्विता के उदाहरण मिलने लगे थे। उनकी स्मरण शक्ति अत्यन्त तीव्र थी। उनकी माता श्रीमती पार्वती बाई धार्मिक विचारों की महिला थीं जिसकी स्पष्ट छाप तिलक के व्यक्तित्व पर पड़ी और वे जीवन भर हिन्दू संस्कृति व हिन्दू धर्म के उपासक रहे। दस वर्ष की अल्प आयु में उन्हे माता की मृत्यु का सामना करना पड़ा था। 15 वर्ष की अवस्था में उनका विवाह तापी बाई से हुआ और सोलह वर्ष की आयु में उन्होंने जीवन की एक अन्य दुखद घटना का सामना किया। उनके पिता उनके बीच नहीं रहे। अर्थात अपने जीवन की अल्पावस्था में ही उन्होंने अनेक कष्टों का सामना किया, किन्तु धैर्य व सहनशीलता के साथ निरंतर अध्ययनरत रहे। पिता की मृत्यु के पश्चात चाचा गोविन्द राय के सानिध्य में उनका लालन-पालन हुआ। सन् 1876 में बी.ए. तथा सन् 1879 में उन्होंने कानून की परीक्षा उत्तीर्ण की। उच्च शिक्षा प्राप्ति के साथ ही उन्होंने सरकारी नौकरी में प्रवृत्त ना होने का प्रण भी किया।

शिक्षक जीवन में प्रवेश तथा सामाजिक राजनीतिक सक्रियता

सरकारी नौकरी पर दृष्टि न होने के कारण उनके पास कार्य की अपार सम्भावनाएँ थीं। उन्होंने अपना प्रथम कार्यक्षेत्र शिक्षा को चुना और विष्णु शास्त्री के साथ मिलकर सन 1980 में पूना में न्यू इंग्लिश स्कूल की स्थापना की। इस स्कूल में उन्होंने 1 वर्ष तक अवैतनिक अध्यापक के रूप में कार्य किया। 1881 में गोपाल राव आगरकर, नाम जोशी और चिपलूणकर के साथ उन्होंने मराठा तथा केसरी पत्रों का संचालन प्रारम्भ किया। 1882 में कोल्हापुर के दीवान के विरोध में तीन पत्रों को छापने के कारण तिलक और आगरकर को चार महीने कैद की सजा हुई। यहाँ दीवान के अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाने के कारण मराठी जनता के हृदय में तिलक के प्रति आदर व सम्मान की भावना भी जागृत हुई। वह मराठी जनता के प्रिय बन गये। 1884 में डेक्कन एजुकेशन सोसाइटी (Deccan Education Society) की स्थापना के बाद 1885 में फर्ग्युशन कॉलेज (Ferguson College) खोला गया तिलक ने 5 वर्षों तक इस कॉलेज में संस्कृत और गणित का अध्यापन किया।[1] आदर्श चरित्र, व्यवहार की गंभीरता तथा विषय की विद्वता के

कारण वह एक आचार्य के रूप में श्रद्धा के पात्र हुए। यद्यपि आगे चलकर उन्होंने इस सोसाइटी से त्यागपत्र दे दिया और मराठा व केसरी पत्रों के संपादन में तल्लीन हो गये। हिन्दुओं में निर्भयता और संघर्ष शक्ति की भावना को जागृत करने के उद्देश्य से 1893 में उन्होंने गणपति उत्सव की शुरुआत की। आगे चलकर यह सामूहिक गणपति उत्सव महाराष्ट्र में अत्यंत जनप्रिय हो गया। इससे उत्साहित होकर 1895 मे बाल गंगाधर तिलक ने मराठा स्वराज्य के जनक शिवाजी की देशभक्ति और आत्म सम्मान की याद, सामान्यजन में ताज़ा करने के उद्देश्य से शिवाजी उत्सव को आरंभ किया। इन उत्सवों के माध्यम से जनता में उत्साह, आपसी भाईचारा तथा अपने स्वयं की संस्कृति के प्रति गौरव का भाव जाग सका। तिलक अपनी दूरदृष्टि से इस बात का सही अनुमान लगा सके कि धार्मिक पर्वों पर एकत्रित होकर वीर पूजा करना भी राष्ट्र के उद्धार व राष्ट्रीय एकता के विकास में सहायक हो सकता है। तिलक तथा गोखले दोनों ही 1889 में कांग्रेस के अधिवेशनों में सम्मिलित होते रहे थे अत: वे राजनीतिक क्षेत्र में भी सक्रिय रहे। 1896 में पश्चिम भारत में पड़े भीषण अकाल में वह सामान्य जनता के सहायतार्थ खड़े दिखे। 1897 में बम्बई और पूना में प्लेग और महामारी फैल जाने पर उन्होंने सहायता कार्य गठित किए। रोग के संक्रमण की चिंता किए बगैर, जनता की सेवा में वह स्वयं आगे आए, इसी बीच प्लेग की रोकथाम के लिए प्लेग कमिश्नर रेण्ड ने साफ-सफ़ाई के नाम पर जनता पर अलग तरह का दबाव बनाना शुरू किया। इस कार्यक्रम के प्रति उसकी स्वेच्छाचारी नीति जनता के लिए अत्यंत कष्टकारी थी। तिलक ने उसकी इस नीति का खुले शब्दों में विरोध किया। 22 जून 1897 को दामोदर चाकेकर द्वारा रैण्ड और आर्यस्ट की हत्या कर दी गयी जो कि जनता के असंतोष का परिणाम था।[2] तिलक गिरफ्तार हो गए इस घटना से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष संबंध स्थापित ना होने के बावजूद, अंग्रेज़ सरकार ने उन पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया और उन्हें 18 माह के कठोर कारावास की सजा दी। यद्यपि ज्यूरी के सर्वसम्मति के अभाव में दिया गया यह निर्णय न्याय के विरुद्ध था। सजा का आधार शिवाजी उत्सव पर दिये गये केसरी के प्रकाशित व्याख्यान को बनाया गया। इस सजा से सारा देश स्तब्ध था। तिलक ने किसी भी प्रकार की क्षमायाचना से इंकार करते हुए कारावास को स्वीकार किया। 18 माह पश्चात कारावास से मुक्त होने के बाद वह एक वीर योद्धा के समान पुन: सार्वजनिक जीवन में सक्रिय हो गए। करन्दीन्दर ने उन्हें आधुनिक भारत का हरक्यूलिज तथा प्रोमेथियस कहा था।[3]

माण्डले कारावास तथा छह वर्षीय निर्वासित जीवन

1905 में एक बार पुन: अपनी स्वेछाचारी नीति का परिचय देते हुए अंग्रेज़ी सरकार ने बंगाल के विभाजन का निर्णय लिया। पूरे देश में उनके इन निर्णय के प्रति असंतोष था। तिलक ने इस असंतोष को आवाज़ दी। उन्होंने एक राष्ट्रनायक का रूप धारण कर बंगाल विभाजन के विरोध में

किए जा रहे आंदोलनों को राष्ट्रीय-दासता-विमोचन आंदोलन का रूप दे दिया। स्वराज्य, स्वदेशी, राष्ट्रीय शिक्षण और बहिष्कार के कार्यक्रमों से पूरा देश अंग्रेज़ सरकार की दमनकारी नीति के विरोध में उठ खड़ा हुआ। स्वदेशी आंदोलन की उग्रता और वेग को देखकर अंग्रेज सरकार ने अपनी नीतियों में सुधार के बजाए अपनी पूरी शक्ति इस आंदोलन को दबाने में लगा दी। अंग्रेज़ों के शक्ति प्रदर्शन व भारतीयों के विरोध की पराकाष्ठा 1908 के मुजफ्फरपुर बम काण्ड़ के रूप में हुई।[4] खुदीराम बोस द्वारा जिला मजिस्ट्रेट किंग्स फोर्ड की गाड़ी पर फेंके गए बम का खुला समर्थन न करने के बावजूद तिलक केसरी के माध्यम से क्रांतिकारी आंदोलनों का समर्थन करते रहे थे। इन लोगों तथा सरकार की आबकारी नीति के विरोध प्रदर्शन को आधार बनाकर एक बार पुनः तिलक पर अंग्रेज़ सरकार द्वारा संगीन मुकदमा चलाया गया। तिलक की खुदीराम बोस, प्रफुल्ल चाकी, श्याम जी कृष्ण वर्मा, विनायक दामोदर सावरकर आदि क्रांतिकारियों से सहानुभूति थी। अंग्रेज़ सरकार ने इस मुकदमे मे तिलक की जमानत तक ना होने दी। तिलक ने स्वयं अपनी पैरवी करते हुए इस मुकदमे के बीच 21 घंटे का भाषण दिया किन्तु शक्ति के मद में चूर अंग्रेज़ी सियासत में मानवाधिकारों की कोई सुनवाई न थी। तिलक के प्रभाव व जनता पर उनकी सीधी पकड़ से डरी हुई सरकार उन्हें किसी भी तरह जनता के बीच नहीं आने देना चाहती थी। ब्रिटिश प्रशासकों की नीति किसी भी प्रकार तिलक को जेल अथवा विदेश में स्थापित कर देने की थी। अंततः उन्हें छह वर्ष के निर्वासित जीवन का दंड देते हुए बर्मा के माण्डले जेल भेज दिया गया। इसे उन दिनों काले पानी की सजा कहा जाता था। उनके जेल जाने के बाद उग्र दल छिन्न-भिन्न हो गया।

तिलक छह वर्ष तक माण्डले जेल में रहे। इन वर्षो में उनके शरीर ने अपार क्षति झेली। शारीरिक कष्टों ने उन्हें असमय वृद्ध कर दिया किंतु ये कुछ वर्ष उन्होंने एक ऋषि के समान साधना में बिताए और मानसिक दृढ़ता को और परिपक्व किया। उन्होंने अपने मानसिक बल से शारीरिक कष्टों पर विजय पाई। स्वयं के लिए निर्वासित जीवन की सजा की घोषणा के समय ही उन्होंने कहा था, यद्यपि ज्यूरी ने मुझको अपराधी बताया है, तथापि मेरी अंतरात्मा कहती है कि मैं निर्दोष हूँ। संसार चक्र को चलाने वाले मानवों से ऊपर विराट शक्तियाँ है। करुणामय विधाता का यही प्रयोजन हो सकता है कि मेरे कष्ट सहन में ही वह उद्देश्य, जिसका मैं प्रतिनिधित्व करता हूँ, अधिक तेजस्वी बनें। इस जनकल्याणकारी भावना के साथ उन्होंने जेल की सज़ा पूरी की। इस कारावास में ही उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ गीता रहस्य की रचना की। यह अनमोल कृति 1915 में उनके जेल से छूटने के बाद प्रकाशित हुई। जून 1914 में यह महान राष्ट्र योद्धा जब जेल से छूटा तो ऐसा प्रतीत होता था मानो उनके देश प्रेमी हृदय में ऋषित्व का प्रवेश हो गया हो। जेल से छूटने के बाद हिम्मत हारे बगैर वह पुनः सार्वजनिक-राजनीतिक जीवन में प्रविष्ट हुए। पूरे देश ने उनका खुले दिल से स्वागत किया। यद्यपि

उनकी धर्मपत्नी उनका स्वागत करने हेतु प्रस्तुत ना थी। माण्डले कारावास की अवधि पूर्ण होने के दो वर्ष पूर्व ही उनका देहांत हो चुका था। तिलक ने इन सभी उतार-चढ़ाव के बीच अपने मन तथा मस्तिष्क को संयमित कर हमारे बीच एक आदर्श प्रस्तुत किया।

स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है उद्घोषणा तथा प्रहार

बाल गंगाधर तिलक के जीवन का मुख्य उद्देश्य था भारतवर्ष का उत्कर्ष। इस उत्कर्ष में वह अंग्रेजों की दासता को सबसे बड़ा बंधन मानते थे। अत: देश को आजादी दिलाना उनकी प्राथमिकता थी। 1916 में होमरूल लीग की स्थापना होने के साथ ही एनी बेसेन्ट के साथ मिलकर उन्होंने गृह स्वराज्य आंदोलन अथवा होमरूल आंदोलन द्वारा स्वराज्य का संदेश पश्चिमी भारत में गुंजायमान कर दिया। इसी वर्ष (1916) लखनऊ कांग्रेस अधिवेशन में उन्होंने पूरे नौ वर्ष बाद हिस्सा लिया। तिलक के परम विरोधी वैलेन्टिन शिरोल तक ने यह स्वीकार किया कि जब लखनऊ कांग्रेस के पंडाल में तिलक ने प्रवेश किया तब देवता के समान उनका स्वागत किया गया। इसी अवसर पर उन्होंने उद्घोषणा की, 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है'। उनके सद्प्रयत्नों से कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग का अधिवेशन एक ही पंडाल में साथ-साथ हुआ। लखनऊ पैक्ट तैयार हुआ जिसमें कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग ने मिलकर स्वराज्य की मांग प्रस्तुत की। 1917-18 के बीच देश भर में स्वराज्य का महामंत्र गूंज उठा। 1918 में वे सर्वसम्मति से कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गए, किन्तु शिरोल केस के सिलसिले में इंग्लैण्ड चले जाने की वजह से मदन मोहन मालवीय ने इस पद की शोभा बढ़ाई। 1918 के अंतिम त्रिमास में वे विलायत रहे। वैलेन्टिन शिरोल ने अपनी पुस्तक भारतीय असंतोष (Indian Unrest) में तिलक के राजनीतिक कार्यों की आलोचना की थी। तिलक ने उस पर मुकदमा चलाया था यद्यपि यहां भी उन्हें न्याय ना मिल सका था, हां भारत की जनता के हृदय में उनका सम्मान ज्यों-का-त्यों विद्यमान था। उन्हें तिलक के आदर्श व्यक्तित्व, विशुद्ध आत्मा तथा उनकी असीम देशभक्ति के लिए किसी प्रकार के प्रमाण की आवश्यकता न थी। उनका व्यक्तित्व तथा कृतित्व भारत में ज्यों-का-त्यों श्रद्धेय बना रहा।

विलायत प्रवास में अपनी राजनीतिक दूरदर्शिता का परिचय देते हुए तिलक ने ब्रिटिश मज़दूर दल के साथ राजनीतिक संबंध स्थापित किए। आगे चलकर भारत को स्वतंत्रता प्रदान करने का कार्य मजदूर दल ने ही किया। 1919 के जलियावाला बाग कांड से वह बहुत व्यथित थे अत: जलियावाला बाग तथा खिलाफ़त के मुद्दे पर गाँधी जी के साथ असहयोग आंदोलन चलाने की उन्होंने सहमति प्रदान की। 1अगस्त 1920 का दिन इस आंदोलन का श्री गणेश करने के लिए निर्धारित किया गया था किंतु 31 जुलाई की रात 12 बजकर चालीस मिनट पर उन्होंने महाप्रयाण कर लिया। चेतनावस्था में उनके मुख से सुने गए अन्तिम वाक्य "यदा यदा हि धर्मस्य" था।

स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है इस घोषणा के साथ अंग्रेज़ सरकार पर किए जाने वाले प्रहार के वेग की ऊर्जा उन्होंने अपने शरीर से चुकाई थी। निरंतर श्रम तथा अतिव्यस्त दिनचर्या ने उन्हें समय पूर्व मृत्यु के निकट पहुँचा दिया था। भारत के इस महान नेता की शवयात्रा में अपार जनसमूह उमड़ पड़ा था। उनकी मृत्यु से पूरा देश दु:खी था।

व्यक्तित्व तथा कृतित्व

बाल गंगाधर तिलक का व्यक्तित्व तथा कृतित्व आज भी हमारे लिए प्रेरणा का स्त्रोत है। वह एक धार्मिक तथा आत्मसम्मानी परिवार से संबंधित थे जिसकी छाप उनके व्यक्तित्व पर थी। सरकारी नौकरी ना करने का प्रण उनके आत्मसम्मान का प्रतीक था। गोपाल गणेश आगरकर तथा विष्णुशास्त्री चिपलूणकर के साथ उन्होंने कई वर्ष शिक्षा के प्रबंध एवं अध्यापन का कार्य किया। उन्होंने भारतीय जनता के बीच सादा जीवन तथा उच्च विचार का आदर्श भी प्रस्तुत किया। एक शिक्षाशास्त्री के रूप में उन्होंने पूना न्यू इंग्लिश स्कूल, डेक्कन एजुकेशन सोसाइटी तथा फर्ग्युसन कालेज की स्थापना में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था। अपने जीवनकाल में उन्होंने जिस कार्य में हाथ लगाया उस पर अपना गंभीर प्रभाव छोड़ा। उनकी मेधा बड़ी कुशाग्र थी। अंग्रेज सरकार की नीतियों में छिपी कुटिलता को भाँपने में उन्हें समय ना लगता, वे इस कुटिलता को सामान्य जनता के सामने लाने में भी न हिचकते थे। इस महान देश प्रेमी का साहस, निर्भयता तथा दयालुता हम सब के लिए अनुकरणीय है।

उन्होंने अपने जीवन के लगभग 40 वर्ष बिना किसी निजी लाभ के देश की सेवा में समर्पित किए थे। केसरी के माध्यम से उन्होंने प्राकृतिक अधिकारों, राजनीतिक स्वतंत्रता और न्याय का संदेश घर-घर पहुँचाया था। वे केवल आक्रामक राष्ट्रवादी ही नहीं थे, राजनीति के क्षेत्र में उनके द्वारा किए गए कार्यों में हमें उच्चकोटि के व्यवहारकुशल राजमर्मज्ञ के गुण भी देखने को मिलते हैं। राजनीतिक जीवन की वास्तविकता की उन्हें अच्छी परख की। वक्ता तथा लेखक के रूप में वह सीधी-सादी, स्पष्ट व तर्कपूर्ण भाषा का प्रयोग करते थे। वे लोकतंत्रवादी थे उन्होंने अपने देशवासियों से प्रेम किया और उन्हें राजनीतिक स्वतंत्रता का मूल्य समझाया। उनमें प्रबल नैतिक चेतना थी। यही करण है कि उन्होंने कभी भी अनुचित उपायों को स्वीकार नहीं किया। महात्मा गांधी ने लिखा भी है – "मैंने अन्तरात्मा का मूल्य तिलक महराज से सीखा है।" वे लिखते हैं "जहाँ तक मैं तिलक के व्यक्तित्व को समझ पाया हूँ वे भगवद्गीता के शब्दों में स्थितिप्रज्ञ और त्रिगुणातीत थे। मृत्यु को सामने खड़ा देखकर भी वे पूर्णत: अविचलित रहे।'' वास्तव में वह ऐसे महापुरुष थे जिन्होंने "स्वराज्य" और "कर्मयोग" दो मंत्र भारतवर्ष को दिए।

एक प्रकांड पंडित तथा मराठी साहित्य की विभूति के रूप में भी तिलक अमर हैं। उन्होंने मराठी में ओजपूर्ण तथा सशक्त गद्यशैली का निर्माण किया। उनकी कुछ महत्त्वपूर्ण साहित्यिक रचनाएँ केसरी के अंकों में प्रकाशित हुईं। गीता

रहस्य के अतिरिक्त उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं- 1. द ओरामन, 2. द आर्कटिक होन इन दि वेदाज़ 3. वैदिक क्रोनोलॉजी एण्ड वेदांग ज्योतिष। भाषा की शुद्धता व सहजता के साथ उनकी रचनाओं में गणित का गहरा प्रभाव पाया जाता है।

तिलक तथा आगरकर दोनों ने मिलकर महाराष्ट्र में शिक्षा आंदोलन चलाया था। वे पश्चिमी शिक्षा और संस्कृति के अंधानुयायी भी नहीं थे। उन्होंने शिक्षा को अपने राष्ट्रवाद का मूलाधार बनाया। उन्होंने शिक्षा के माध्यम से देशवासियों का चरित्र-निर्माण करते हुए उनको संगठित करने का स्वप्न देखा था। इस प्रकार हम देखते हैं कि लोकमान्य तिलक एक महान देशभक्त, कुशल राजनीतिज्ञ, सफल लेखक होने के साथ-साथ आदर्श व्यक्तित्व के स्वामी थे। भारत की शिक्षा व्यवस्था के संदर्भ में भी वह जीवनपर्यंत संवेदनशील रहे। उनकी शैक्षिक विचारधारा के महत्त्वपूर्ण अंश हमारे लिए आज भी अपना विशेष महत्त्व रखते हैं।

तिलक के शैक्षिक विचार

बाल गंगाधर तिलक पढ़ना-लिखना सीख लेने को शिक्षा नहीं मानते थे। उनका मानना था कि "शिक्षा वही है जो हमें जीविकोपार्जन के योग्य बनाए, देश का सच्चा नागरिक बनाए, हमें हमारे पूर्वजों का ज्ञान और अनुभव दे।'' तिलक व आगरकर ने मिलकर महाराष्ट्र में जिस शिक्षा आंदोलन की नींव रखी थी वह भारतीय पुनर्जागरण व राष्ट्रवाद का हिमायती था। उनके द्वारा स्थापित न्यू इंग्लिश स्कूल अंग्रेज़ी शिक्षा व्यवस्था से भिन्न था। उनका मानना था कि राष्ट्रीय शिक्षा से ही राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण हो सकेगा। तिलक ने बताया कि शिक्षा प्राप्त करना सस्ता होना चाहिए और शिक्षक के उस आदर्शवाद से अनुप्रेरित होना चाहिए जो कि देश के प्राचीन इतिहास में विद्यमान रहा है। भारत के वैदिक और उपनिषदिक युगों के गुरु और आचार्य धन तथा भौतिक समृद्धि के लिए विख्यात नहीं थे। उनकी प्रसिद्धि, उनकी पहचान मुख्यतः उनकी विद्वता, सत्यनिष्ठा और कर्तव्यपरायणता के कारण थी। लोकमान्य तिलक चाहते थे कि भारत के पुनरुद्धार के लिए उस पुरातन आदर्श को अंगीकार किया जाए।

यहाँ हमें यह भी ध्यान देना होगा कि उन्होंने भारत के राजनीतिक विकास में अंग्रेज़ी शिक्षा के योगदान की अनदेखी नहीं की। होमरूल आंदोलन के दिनों में जब वे देश का दौरा कर रहे थे उस समय भी उन्होंने स्पष्ट रूप से बिना संकोच के स्वीकार किया कि अंग्रेज़ी शिक्षा ने देश के राजनीतिक जागरण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था। वास्तव में तिलक ने भारतीय आदर्शों तथा पाश्चात्य कार्यप्रणाली और संस्थाओं के समन्वय को महत्त्व दिया था। आगे का कार्य वह स्वयं की बोली-भाषा को आधार बनाकर करना चाहते थे। उन्होंने घोषणा की थी कि यदि आप चाहते हैं कि विद्यार्थी पढ़ाए हुए को आत्मसात कर सकें तो विदेशी भाषा के अध्ययन का बोझ कम करना होगा, नहीं तो वे जो कुछ पढ़ेंगे उसे बिना समझे रटते रहेंगे और वे अर्धशिक्षित दुर्विग्धों से अधिक कुछ न बन सकेंगे। तिलक का मानना था कि ''हमें अपने स्कूल स्वयं स्थापित करने

चाहिए और अपना काम निःस्वार्थ भाव से शुरू करना चाहिए।'' उन्होंने भारत में अंग्रेज़ी भाषा को सीखने की बाध्यता को उचित नहीं माना। वे राष्ट्रभाषा की आवश्यकता को भली-भाँति जानते थे और हिन्दी भाषा को भारत की राष्ट्रभाषा बनाए जाने के समर्थक थे। हाँ, यहाँ उन्होंने क्षेत्रीय भाषाओं की महत्ता की भी अनदेखी नहीं की।

एक सामाजिक सुधारवादी होने के नाते वह शिक्षा में भी सुधारवाद के समर्थक थे और शिक्षा में आवश्यकतानुसार समय-समय पर परिवर्तन किए जाने को ज़रूरी मानते थे।[6] उन्होंने शिक्षा को सामाजिक विकास का केंद्रबिंदु माना था। वे राष्ट्रीय शिक्षा के समर्थक थे। तिलक तथा उनके साथियों ने स्वराज्य का जो मंत्र जन-जन तक पहुँचाया उसमें स्वदेशी, बहिष्कार व निष्क्रिय प्रतिरोध के साथ-साथ राष्ट्रीय शिक्षा की नीति पर भी ज़ोर दिया गया था। उन्होंने केसरी में लिखा था कि ''हमारा राष्ट्र एक वृक्ष की तरह है जिसका मूल मंत्र स्वराज्य है तथा स्वदेशी और बहिष्कार उसकी शाखाएँ हैं।'' धीरे-धीरे स्वदेशी को और भी व्यापक अर्थ में स्वीकार किया जाने लगा। शिक्षा, विचारों और जीवन पद्धति में भी स्वदेशी की बात की जाने लगी और एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था के लिए जनमत बन सका जो देश की अपनी एक पहचान हो। जो देश की आवश्यकता, उसके विकास के अनुरूप हो। स्वदेशी आंदोलन के दिनों में वे शिक्षा के राष्ट्रवादी पहलू पर बल देने लगे थे। बालकों के चरित्र निर्माण की प्रक्रिया में वह धार्मिक शिक्षा की महत्ता के प्रति बड़े सजग दिखाई दिए। उन्होंने कहा था कि "केवल धर्मनिरपेक्ष शिक्षा चरित्र का निर्माण करने के लिए पर्याप्त नहीं है। धार्मिक शिक्षा आवश्यक है, क्योंकि उच्च सिद्धांतों और आदर्शों का अध्ययन हमें पाप कर्मों से दूर रखता है धर्म हमें सर्वशक्तिमान परमात्मा के वास्तविक स्वरूप का दर्शन कराता है। हमारा धर्म बतलाता है कि अपने कर्मों से मनुष्य देवता तक बन सकता है। जब हम अपने कर्मों से देवता बन सकते हैं, तो अपने कर्मों से हम यूरोपवासियों की भाँति बुद्धिमान और क्रियाशील क्यों नहीं बन सकते? कुछ लोगों का कहना है कि धर्म से झगड़े उत्पन्न होते हैं, किन्तु मैं पूछता हूँ, धर्म में झगड़ा करना कहाँ लिखा है? यदि संसार में कोई ऐसा धर्म है जो अन्य धार्मिक विश्वासों के प्रति सहिष्णुता का उपदेश देता है और साथ-ही-साथ अपने धर्म पर दृढ़ रहना सिखाता है, तो वह केवल हिन्दू धर्म है। इन स्कूलों में हिन्दुओं को हिन्दू धर्म की और मुसलमानों को इस्लाम की शिक्षा दी जाएगी और वहाँ यह भी सिखाया जाएगा कि मनुष्य को दूसरे धर्मों के भेदों को भूलना चाहिए।"[7]

इस प्रकार हम देखते हैं कि तिलक के धार्मिक शिक्षा संबंधी दृष्टिकोण व्यापक तथा अत्यंत व्यावहारिक हैं। वह धर्म के माध्यम से बालकों में उदारवादी दृष्टिकोण और आत्मबल का विकास करना चाहते थे। धर्म की शिक्षा बालकों के चरित्र को उत्तम बनाकर उनके भीतर जन कल्याणकारी भावनाओं का विकास कर सके, इस बात पर उन्होंने सदैव बहुत बल दिया।

अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली में निहित इस कमी की ओर उन्होंने हमारा ध्यान भी आकर्षित किया। राष्ट्रीय शिक्षा पर दिए गए एक भाषण में उन्होंने कहा भी था कि अंग्रेजों की शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत बीस वर्ष तक लड़ने के बाद मनुष्य को धार्मिक शिक्षा के लिए कोई दूसरा द्वार खटखटाना पड़ता है। जो लोग अपने पूरे शिक्षा काल में मन में यह विचार जमा लेते हैं कि धर्म कोरा आडंबर है उनमें कर्तव्य की कोई भावना शेष नहीं रह जाती। उन्होंने यह भी बताया कि "किसी को अपने धर्म पर अभिमान कैसे हो सकता है यदि वह उससे अनभिज्ञ है?"

उन्होंने इस ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित किया था कि शिक्षा संस्थाओं में राजनीतिक शिक्षा भी दी जाए। उनका मानना था कि इसके अभाव में नागरिकों में अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागृति उत्पन्न नहीं होगी। तिलक ने औद्योगिक शिक्षा को भी पर्याप्त महत्त्व दिया। उनका मानना था कि उद्योग एवं प्राविधिक शिक्षा को पाठ्यक्रम में अवश्य स्थान दिया जाना चाहिए, ताकि शिक्षार्थियों में आजीविका-उपार्जन की क्षमता विकसित की जा सके।

स्पष्ट है कि बाल गंगाधर तिलक भारत में एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था के समर्थक थे जो बालक का सर्वांगीण विकास कर उसे जीवन के संघर्ष के लिए तैयार कर सके। जो छात्रों में धार्मिक भावना के समावेश से उन्हें उत्तम चरित्र का स्वामी बनाकर कर्तव्यनिष्ठ बनाए और उन्हें जनकल्याणकारी कार्यों के लिए प्रेरित करे। उन्होंने शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों में देश-प्रेम की भावना का विकास किए जाने का समर्थन किया और देश के राजनीतिक जागरण व प्रगति के लिए शैक्षिक सुविधाओं के प्रचार को आवश्यक माना।

संदर्भ

चौबे, एस.पी., चौबे, अखिलेश, 2007, *एजुकेशनल थिंकर्स,* नीलकमल पब्लिकेशन, हैदराबाद, पृ.-86

वर्मा, वी.पी., 2002, *आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तक*, लक्ष्मीनारायन अग्रवाल, आगरा, पृ.-228

करन्दीकर, एस.एल., 1957, *लोकमान्य बालगंगाधर तिलक : दि हरक्यूलीज़ एण्ड प्रोमेथियस ऑफ मॉडर्न इंडिया, दि ऑथर, पूना*

शर्मा, बी.एम., शर्मा, रामकृष्ण दत्त, शर्मा, सविता, 2005, *भारतीय राजनीतिक विचारक,* रावत पब्लिकेशन, नयी दिल्ली पृ.-71-75

वर्मा, वी.पी., 2002, *आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तक*, पूर्व संदर्भित पृ.-229

रहबर, हंसराज, 2007, *तिलक से आज तक,* साक्षी प्रकाशन, दिल्ली, पृ.-77

वर्मा, वी.पी., 2002, *आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तक*, पूर्व संदर्भित पृ.-241